प्रिय जिंदगी

एलिस मनरो

हिन्दी ADDA

प्रिय जिंदगी

जब मैं छोटी थी, एक लंबी सड़क के आखिरी सिरे पर रहती थी, या ऐसा कहूँ कि उस सड़क पर रहती थी जो मुझे बेहद लंबी लगती थी। जब मैं प्राइमरी स्कूल से, और बाद

के बरसों में हाई स्कूल से लौटती, मेरे पीछे वह निखालिस कस्बा होता था, अपनी सारी गतिविधियों और बगलरस्तों और अँधेरा छा जाने के बाद चमकने वाली राहबत्तियों के साथ। मेटलैंड नदी पर बने हुए दो पुल शहर के खत्म होने की निशानी थी : लोहे से बना एक सँकरा पुल, जहाँ कारें अक्सर भ्रम में पड़ जातीं कि कौन रुक जाए और कौन आगे बढ़कर पार कर ले। और दूसरा था लकड़ी का बना पैदल पुल, जिसमें एक फट्टा अक्सर गायब रहता था। उसकी उतनी जगह खाली रहती थी। चलते समय आप उसमें से झाँक नीचे जल्दबाजी में दौड़ते पानी को निहार सकते थे। मुझे वैसा करना पसंद था, लेकिन जल्द ही कोई न कोई उसकी मरम्मत कर नया फट्टा लगा जाता।

उसके बाद हल्का-सा एक गड्ढा था, दो-तीन जर्जर मकान थे जिनमें हर बारिश पानी भर जाता था, फिर भी जाने कहाँ से आए हुए लोग उनमें रहते थे। उसके बाद एक और पुल था, जो खुद ही इतना गहरा था कि उस पर चलते हुए आपको हर समय डूब जाने का डर लगे। उसके बाद रास्ता दो हिस्सों में बँट जाता, एक दक्षिण में पहाड़ी के ऊपर चढ़ जाता, वहाँ से घूमकर फिर नदी के ऊपर आ जाता, वहाँ से वह सच में हाइवे बन जाता, जबकि दूसरा रास्ता उछलता-कूदता, मेले के पुराने मैदानों को छूता पश्चिम को मुड़ जाता।

पश्चिम वाला यह रास्ता मेरा था।

एक और रास्ता था, जो उत्तर की ओर जाता, जिसके किनारे पक्का फुटपाथ बना हुआ था और उस पर कई मकान भी बसे हुए थे, जो इस तरह खड़े थे, जैसे शहर का ही हिस्सा हों। उनमें से एक मकान पर बोर्ड लगा था - 'सलाद टी', जिसे देखकर ही समझ में आ जाता कि यहाँ कभी किराने का सामान बिकता होगा। उसके बाद एक स्कूल पड़ता, जहाँ मैंने अपने जीवन के शुरुआती दो साल पढ़ाई की थी और दुआ की थी कि कभी यहाँ लौट कर न आऊँ। उन्हीं बरसों में मेरी माँ ने मेरे पिता से जिद कर-करके शहर में एक मकान खरीदवा लिया था ताकि उनका परिवार शहर की सीमा में बस सके और मैं एक बड़े स्कूल जा सकूँ। बाद में चीजें ऐसी घटीं कि लगा, माँ को वैसा करने की जरूरत ही नहीं थी, क्योंकि जब मैंने नए स्कूल जाना शुरू किया, उसी महीने जर्मनी के खिलाफ युद्ध छिड़ गया। जैसे कोई जादू हुआ हो, वह पुराना स्कूल अचानक बंद हो गया। उस स्कूल में कई दबंग लड़के थे, जो मुझसे मेरा लंच छीन लेते थे, मुझे पीट देने की धमकी देते थे और इतना हुड़दंग होता था कि पता ही न चले, कोई पढ़ भी रहा होगा। जल्द ही वहाँ सिर्फ एक कमरा और एक टीचर बचा, जो कि आधी छुट्टी के दौरान क्लास का दरवाजा बंद तक नहीं करता था। जल्द ही यह भी पता चल गया था कि जो लड़के उकसावे की हद तक प्रतीकों व इशारों से मुझसे पूछते और मेरी

देह भोग लेने को उतावले रहते, वे लड़के अब अपने बड़े भाइयों की तरह सेना में एक नौकरी पा लेने को अधीर हो गए थे।

मुझे नहीं पता कि उन स्कूल के शौचालयों में कोई सुधार हुआ भी है या नहीं, पर उस समय तो वे वाहियात थे। ऐसा नहीं कि हमारे घर के शौचालय शानदार रहे हों, पर बावजूद वे साफ थे, उनकी फर्श चमकीली थी। उसके उलट स्कूल के शौचालय में कोई भी मलत्याग करते समय उसे उस छेद में नहीं गिराता था। यह विरोध का कोई तरीका था या कुछ और, किसी को नहीं पता।

शहर में आने के बाद मुझे कोई खास आसानी नहीं हुई थी। वहाँ भी वही लोग आ गए थे, जो बचपन से मेरे साथ थे और अब भी जीवन की बहुत सारी रीतियाँ मैं सीख नहीं पाई थी, लेकिन फिर भी नए स्कूल के चमकदार फर्श व सीट वाले शौचालय को देखना आरामदेह था। उसके फ्लश की शहराती आवाज सुनना सुकूनदेह था।

जब मैं पिछले स्कूल में थी, तब एक लड़की मेरी दोस्त बन गई थी। उसका नाम डायना था और दूसरी क्लास का आधा साल बीत जाने के बाद वह आई थी। उसकी उम्र मेरे जितनी ही थी। वह उन्हीं मकानों में रहती थी, जिनके आगे पक्के फुटपाथ बने थे। एक दिन उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं हाइलैंड फ्लिंग कर सकती हूँ। मेरे ना कहने पर वह मुझे सिखाने के लिए राजी हो गई। यह एक किस्म का नृत्य था, जो जीत की खुशी में किया जाता है। उस रोज स्कूल के बाद मैं उसके घर चली गई। उसकी माँ मर चुकी थी। वह अपने दादा-दादी के साथ रहती थी। उसी ने मुझे बताया कि हाइलैंड फ्लिंग नाचने के लिए आपको टक-टक आवाज करने वाले जूतों की जरूरत होती है। जूते उसके पास थे, लेकिन मेरे पास नहीं थे। हम दोनों के पैरों का आकार एक ही था, इसलिए हमने तय किया कि मैं उसके जूते पहनकर नाच सीख लूँगी। उस बीच हमें प्यास लग गई और उसकी दादी ने पीने के लिए हमें पानी दिया। वह पानी बड़ा भयानक था, एकदम हमारे स्कूल के कुएँ की तरह। मैंने उन्हें तफ्सील से बताया कि बोरवेल का पानी ज्यादा स्वादिष्ट होता है। उसकी दादी ने मेरे ऐसे बोलने का जरा भी बुरा नहीं माना और बहुत शांत लहजे में कहा, काश हमारे पास भी बोरवेल होता!

थोड़ी देर बाद ही मेरी माँ उनके दरवाजे पर खड़ी थी। मुझे घर आने में देरी होता जान वह सीधे स्कूल जा पहुँची, वहाँ से उसे पता चला कि मैं इस लड़की के घर आई हूँ। वह सड़क पर खड़ी अपनी कार का भोंपू बजाए जा रही थी। दादी माँ ने हाथ हिलाकर उसका अभिवादन किया, पर मेरी माँ ने उनकी ओर ध्यान भी न दिया। मेरी माँ जल्दी कार नहीं चलाती और अगर कभी चलाती है, तो समझ लो कि मामला बेहद गड़बड़ है।

घर लौटते समय माँ ने मुझे सख्त चेतावनी दी कि तुम आइंदा कभी उस घर नहीं जाआगी। (मुझे खुद से ऐसी कोई सख्ती बरतनी ही नहीं पड़ी क्योंकि उस घटना के कुछ ही दिनों बाद डायना ने स्कूल आना बंद कर दिया था - उसे किसी दूसरे शहर भेज दिया गया था।) मैंने माँ से कहा कि डायना की माँ मर चुकी है, जिस पर माँ ने कहा कि हाँ, उसे पहले से पता है। मैंने माँ को हाइलैंड फ्लिंग के बारे में भी बताया। माँ ने कहा कि तुम आराम से कहीं और सीख लेना, लेकिन उस घर में हर्गिज नहीं।

मुझे उस समय बिल्कुल पता नहीं चला - और सच कहूँ तो पता नहीं, मुझे कब पता चला - कि डायना की माँ वेश्या थी और किसी ऐसे रोग से मरी थी जो अक्सर वेश्याओं को हो जाया करता है। वह चाहती थी कि उसे उसके ही घर में दफनाया जाए और चर्च के मंत्री ने यह दरख्वास्त मंजूर भी कर ली थी। मंत्री ने उस महिला के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया था, उन पर काफी विवाद हुआ था। कई लोग मानते थे कि मंत्री उस मामले को नजरअंदाज कर सकता था, लेकिन मेरी माँ का कहना था कि उसने जो किया, सही किया।

पाप की कमाई मृत्यु है।

यह बात मेरी माँ ने बरसों बाद मुझसे कही। शायद उतने बरसों बाद जब मैं उस स्थिति में पहुँच गई थी कि अपनी माँ की कही ज्यादातर बातों से नफरत कर सकूँ, और खासकर उन बातों से, जिन्हें वह थरथराती हुई नाटकीयता या दृढ़ता से कहती थी।

मैं उस दादी के घर अक्सर चली जाती थी। मुझे देखते ही उसके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान आ जाती। मुझे स्कूल जाता देख उसे बेहद खुशी होती थी। वह बताती कि डायना जहाँ कहीं भी है, वहाँ वह भी स्कूल जाया करती थी, लेकिन उसका स्कूल जल्द ही छूट गया, वह मेरे जितना नहीं पढ़ पाई है। बकौल दादी, उसने टोरंटो में किसी रेस्तराँ में नौकरी कर ली है, जहाँ उसे ऐसी पोशाक पहननी होती है, जिस पर सितारे जड़े हैं। मैं उस दुष्ट उम्र तक पहुँच चुकी थी, जहाँ दादी की बातें सुन आसानी से यह अंदाजा लगा सकती थी कि वह रेस्तराँ जरूर ऐसी जगह है, जहाँ उसे सितारों जड़ी पोशाक उतारनी भी पड़ती होगी।

दूसरे कई लोगों की तरह डायना की दादी भी सोचती थी कि मैं स्कूल में कुछ ज्यादा ही बरस बर्बाद कर रही हूँ। मेरी उस सड़क पर कई मकान थे, जो छितराए हुए बसे थे। शहर में होते, तो उनके बीच इतनी जगह न होती। वैसा ही एक मकान छोटी-सी पहाड़ी पर था, जिसमें वैटी स्ट्रीट्स रहा करता था। वह प्रथम विश्वयुद्ध का एक सैनिक था, जिसने अपना एक हाथ खो दिया था। उसके पास कई भेड़ें और एक पत्नी थी। उतने

बरसों में उसकी पत्नी को मैंने सिर्फ एक बार ही देखा था, जब वह पंप पर खड़ी अपना घड़ा भर रही थी। वैटी हमेशा इस बात पर मखौल करता कि मैं स्कूल में इतने बरसों से कर क्या रही हूँ और मैं अभी तक अपनी परीक्षाएँ भी पास नहीं कर पाई हूँ। मैं भी हंस देती थी और ऐसा व्यवहार करती, जैसे उसकी बात सही हो। मुझे कभी पता नहीं चला कि वह दरअसल मेरे बारे में क्या सोचता है।

उस सड़क पर इस तरह मैं लोगों को जानती थी, और लोग इस तरह मुझे जानते थे। आप हैलो कहेंगे, जिसके जवाब में वे भी हैलो कह देंगे, फिर मौसम के बारे में कोई जुमला छोड़ देंगे या मान लो कि मैं पैदल हूँ, वे कार में हैं, तो मुझे भी बिठा लेंगे। वह पूरी तरह देहात भी नहीं था जहाँ हर कोई, हर किसी के घर की भीतरी बातें तक जानता हो या हर कोई कमोबेश एक ही तरीके से अपना जीवनयापन करता हो।

पाँच क्लासें पूरी पढ़ने के बाद हाइ स्कूल करने में लोगों को जितना समय लगता है, मुझे उससे ज्यादा समय नहीं लगा था, लेकिन कई बच्चों को लगा था। किसी को भी यह उम्मीद नहीं होती थी कि जितने बच्चों ने दर्जा नौ में दाखिला लिया है, वे सभी के सभी दर्जा तेरह से पास होकर निकलेंगे या सभी के सभी व्याकरण में एक जितने ही पारंगत होंगे। बच्चे पार्ट-टाइम नौकरियाँ पकड़ लेते थे जो जल्द ही फुल-टाइम नौकरियों में तब्दील हो जाती थीं। लड़कियाँ इस बीच शादी कर लेती थीं और उनके बच्चे भी हो जाते थे। तेरहवें दर्जे में बमुश्किल एक चौथाई बच्चे बचते, ऐसा महसूस होता कि वे सब के सब आला दर्जे के विद्वान हैं। उस दर्जे तक पहुँचना बड़ी उपलब्धि की तरह होता। या एक खास किस्म का अव्यावहारिक नशा होता, भले बाद के जीवन में आपके साथ कुछ भी घटित हो जाए।

मुझे महसूस होता कि दर्जा नौ में मैं जिन बच्चों के साथ पढ़ी हूँ, उनसे एक पूरी उम्र की दूरी पर खड़ी हो चुकी हूँ। ऐसे में अपने पहले स्कूल के बच्चों को तो जाने कितना दूर महसूस करती।

मैं जब भी डायनिंग हॉल का फर्श साफ करती, एक चीज मुझे हमेशा चौंका देती। मुझे पता था कि वह क्या है - एक बिल्कुल नया-नवेला गोल्फ बैग, जिसमें कई स्टिक्स और गेंदें थीं। मैं सोचती कि आखिर यह हमारे घर में क्यों है। मुझे उस खेल के बारे में कुछ नहीं पता था, लेकिन उसे खेलने वालों के बारे में मैं हमेशा कल्पना करती थी। वे लोग मेरे पिता की तरह पूरे कपड़े नहीं पहनते होंगे। हालाँकि मेरे पिता जब शहर में काम के लिए जाते थे, तो अच्छी पैंट पहनते थे। एक हद तक मैं यह कल्पना भी करती थी कि मेरी माँ ने खिलाड़ियों की तरह कपड़े पहन रखे हैं, अपने माथे पर स्कार्फ बाँध

रखा है और उसके बाल हवा में उड़ रहे हैं। लेकिन मैं यह कल्पना नहीं कर पाती थी कि वह गेंद को गोल्फ के मैदान के छेद में डाल देने की कोशिश कर रही होगी। मुझे लगता था कि यह बड़ा तुच्छ-सा काम है और यह माँ के बूते के बाहर है।

जरूर वह हमारे बारे में भी अलग ही सोचती होगी। जरूर उसने कभी सोचा होगा कि मैं और मेरे पिता एक दिन बिल्कुल अलग किस्म के शख्स बन जाएँगे। उस किस्म के शख्स जो विलासिता की चीजों में लगे रहते हैं। जैसे गोल्फ। डिनर पार्टी। शायद उसने खुद को विश्वास दिला दिया होगा कि कुछ सीमाएँ अब टूट चुकी हैं। उसने खुद को अपने पुश्तैनी खेतों से दूर कर लिया था। उसके पुश्तैनी खेत मेरे पिता के पुश्तैनी खेतों से भी गए-गुजरे थे। वह एक स्कूल में टीचर हो गई थी। उसने ऐसे लहजे में बोलना शुरू कर दिया था कि उसके रिश्तेदार तक उसके पास आने में असहज हो जाते थे। उसने सोचा होगा कि ऐसा करने के बाद हर जगह उसका स्वागत और सम्मान होगा।

मेरे पिता के विचार कुछ और ही थे। ऐसा नहीं है कि वह शहर वालों को खुद से बेहतर समझते हों। पर वह ऐसा जरूर सोचते थे कि शहर वाले खुद को जरूर उनसे बेहतर समझते हैं। उन्होंने शहर वालों को कभी वैसा जताने का मौका नहीं दिया।

ऐसा लगता है कि जहाँ तक गोल्फ की बात है, मेरे पिता ही विजयी रहे होंगे।

ऐसा भी नहीं है कि वह उस तरह रहकर संतुष्ट हुए हों, जिस तरह उन्हें उनके माँ-पिता रखना चाहते थे। जब मेरी माँ के साथ उन्होंने अपना समाज छोड़ा था और एक अनजान शहर से लगी सड़क के इस आखिरी छोर पर जमीन का यह टुकड़ा खरीदा था, तब निश्चित ही उनके दिमाग में था कि वे सिल्वर फॉक्स पालेंगे, उसके फर को बेचकर संपन्न होंगे और बाद में मिंक के कंबलों का व्यवसाय शुरू कर देंगे। जब मेरे पिता छोटे थे, तब उनका मन न तो खेतों में लगता था और न ही पढ़ाई में, बल्कि उन्हें जानवर पकड़ने में बड़ा मजा आता था। तब उससे उन्होंने पैसे भी कमाए थे। उस कालखंड को वह अपने जीवन का सबसे सुखी समय मानते हैं। वह उनके दिमाग से ऐसा चिपका कि उन्होंने कम उम्र में ही तय कर लिया था, बड़ा होकर यही काम करना है। उन्होंने अपनी सारी जमा-पूँजी उसमें लगा दी। नौकरी से माँ ने जो पैसे बचाए थे, वह भी उसमें लगा दिए। उन्होंने अपने जानवरों के लिए बड़े अहाते बनाए और तार की बाड़ों से उन्हें घेर दिया। बारह एकड़ की वह जगह काफी थी। वहाँ चारागाह के लिए भी अच्छी-खासी जगह थी, जहाँ हमारी गाएँ चर सकती थीं। उसी जगह में उन बूढ़े घोड़ों को भी बांधा जाता था, जो मरने के बाद हमारी लोमड़ियों का आहार बन जाते।

चारागाह सीधे नदी किनारे जाकर खत्म होता था। उसमें बारह विशालकाय पेड़ थे, जो छाया के काम आते।

अब जैसा कि मुझे याद पड़ता है, उस समय बेहद हिंसा थी। बूढ़े घोड़े मांस के लोथड़ों में तब्दील हो जाते थे। जिन जानवरों के फर का इस्तेमाल किया जा सकता था, उन्हें हर साल चुन-चुनकर मारा जाता था। सिर्फ उन्हीं को बख्शा जाता था, जो नए बच्चे पैदा कर सकें।

पर मुझे उस सबकी आदत पड़ चुकी थी। मैं बड़ी आसानी से वह सब नजरअंदाज कर देती थी। मैं अपने लिए एक ऐसी दुनिया बना लेती थी जो उन्हीं किताबों की तरह पवित्र होती, जिन्हें मैं पढ़ा करती थी। इन सबमें मैं उन विशालकाय पेड़ों की मदद लेती, उनकी छाँव में लेटी रहती। चमकती हुई नदी ने भी मेरी मदद की। वह चश्मा मुझे चौंकाता था जो नदी से थोड़ा ऊपर ही फूटा था, जहाँ मरियल घोड़े और गाएँ पानी पीते थे। मैं अपने साथ टिन एक मग लिए रखती। मैं उसी से अपने लिए पानी निकालती। आसपास ताजा खाद मौजूद होती और मैं आसानी से उसे उपेक्षित कर देती थी।

उन दिनों मुझे अपने पिता की मदद करनी पड़ती थी, क्योंकि मेरा भाई अभी उतना बड़ा नहीं हुआ था। मैं पंप चलाकर ताजा पानी निकालती थी, अहाते में घुस जानवरों की हौदियाँ साफ करती थी। उनमें दुबारा पानी भरती थी। मुझे उस काम में मजा आता था। यह सोचकर अच्छा लगता था कि यह काम कितना महत्वपूर्ण है। उसे करते समय आसपास जो अकेलापन छा जाता था, उसे महसूस करके आनंद आता था। जब हम बड़े हुए, तो मुझे घर के भीतर रहने के लिए कह दिया गया। वहाँ मुझे माँ की मदद करनी पड़ती। इससे मुझे बेहद गुस्सा आता। कई बार मेरे झगड़े होते। मेरे जवाबों के बारे में कहा जाता कि यह 'जबान लड़ाती' है। मेरी माँ कहती थी कि मैं उसे ठेस पहुँचाती हूँ। नतीजा यह होता कि वह धम्म-धम्म करते खलिहान तक पहुँच जाती और वहाँ पिता से मेरी शिकायत करती। वह अपना काम बीच में ही छोड़ घर आ जाते और अपनी बेल्ट से मेरी पिटाई करते। (उन दिनों यह एक बेहद प्रचलित सजा थी।) उसके बाद घंटों मैं अपने बिस्तर में मुँह ढापे लेटी रोती रहती और घर से भाग जाने की योजनाएँ बनाया करती थी।

वह दौर भी गुजर गया और मैं किशोरावस्था में आ गई। अब मैं आसानी से सँभाले जा सकने लायक बन चुकी थी। मैं चुहलखोर भी हो गई थी। शहर में जो चीजें देखती, घर लौटकर उन चीजों को बड़े मनोरंजक तरीके से दुहराती।

हमारे घर का आकार ठीक-ठाक था। यह कब बना था, किसी को नहीं पता, फिर भी ऐसा अंदाजा था कि इस घर की उम्र अभी सौ साल नहीं हुई है। ऐसा अंदाज इसलिए कि 1858 में पहली बार कोई व्यक्ति इस इलाके में आया था। तब यहीं कहीं बोडमिन नाम की कोई जगह थी, जो अब विलुप्त हो चुकी है। वह लकड़ी का एक बेड़ा खेते हुए नदी के जरिए यहाँ तक आया था। आकर उसने यहाँ के पेड़ काटने शुरू कर दिए। धीरे-धीरे और लोग आए। फिर पूरा गाँव ही बस गया। नए-नवेले इस गाँव में लकड़ियों की कटाई के लिए जल्द ही एक आराघर खुल गया। एक होटल, तीन चर्च और एक स्कूल बन गए। यह वही स्कूल था, जहाँ शुरुआती दो साल मेरी पढ़ाई हुई थी। फिर नदी पर एक पुल बनाया गया। उसके बाद लोगों को समझ में आया कि उस पार जमीन जरा ऊँची है और वहाँ रहना ज्यादा सुविधाजनक होगा। ज्यादातर लोग उस पार चले गए। पीछे यह मूल गाँव बच गया जिसे अब सम्मान की निगाह से नहीं देखा जाता।

ऐसा लगता है कि हमारा घर यहाँ के बहुत पुराने मकानों में से नहीं रहा होगा क्योंकि हमारे घर की दीवारें ईंट से बनी थीं, जबकि उससे पुराने मकानों की दीवारें लकड़ी से बनी थीं। पर यह ज्यादा नया भी नहीं रहा होगा। हमारा मकान गाँव की ओर पीठ किए था। हमारे मकान के चेहरे के आगे ढलान वाले खेत थे, जो नीचे उतरते हुए नदी को उस जगह जाकर छूते थे, जहाँ नदी एक बड़ा बल खाती थी। उस जगह को लोग चौड़ा मोड़ कहते थे। नदी के उस ओर सदाबहार हरियाली वाले पेड़ों का घना जंगल था। हमें वे देवदार की तरह लगते थे, पर वे इतना दूर थे कि हम असल में कभी नहीं जान पाए कि वे क्या थे। उससे भी दूर, एक दूसरी पहाड़ी पर एक और घर था, इतनी दूर से बहुत छोटा दिखता था। उसका मुँह हमारे ही घर की ओर था। हम कभी उस मकान तक नहीं गए। मुझे लगता था कि किताबों में बौनों के घरों के बारे में जो मैं पढ़ती हूँ, यही वही घर है। पर उस घर में रहने वाले शख्स का नाम हमें पता था, या यूँ कहूँ कि वह शख्स किसी एक जमाने में उस घर में रहा था और अब वह मर-खप चुका है। उसका नाम था रोली ग्रेन। यह जो मैं लिख रही हूँ, उसमें अब इस आदमी का कोई जिक्र नहीं आएगा। क्योंकि मैं कहानी नहीं लिख रही, बल्कि इस समय सिर्फ जीवन लिख रही हूँ।

मेरे पैदा होने से पहले मेरी माँ का दो बार गर्भपात हो गया था। 1931 में जब मैं पैदा हुई, तब सभी ने राहत की साँस ली थी। लेकिन हालात कठिन से कठिन होते जा रहे थे। सच तो यह था कि मेरे पिताजी ने फर के व्यापार में उतरने में बहुत देर कर दी थी। जिस तरह की सफलता की उन्होंने कामना की थी, वह बीस के दशक के मध्य के बरसों में ही मिलना संभव थी, क्योंकि तब फर एक नई चीज थी और तब लोगों के

पास पैसा भी था। पर उन्होंने तब अपना व्यापार शुरू नहीं किया। फिर भी हम सबने वह समय काट लिया। युद्ध की शुरुआत और युद्ध के मध्य का वह दारुण समय। युद्ध खत्म होते-होते शायद कोई उम्मीदवान झोंका आया था, क्योंकि उस साल पिता ने घर की मरम्मत करवाई थी, पारंपरिक लाल ईंटों की दीवारों पर भूरा रंग पुतवाया था। उस घर में ईंटों की चिनाई बेहद गड़बड़ तरीके से की गई थी। उनमें इतनी जगह छूटी थी कि ठंड को वे बाहर नहीं रोक पाती थीं। उन्होंने सोचा होगा कि रंग कर देने से वे दरारें भर जाएँगी और ठंडी हवा बाहर ही रुक जाएगी, पर वैसा कभी हुआ हो, यह मुझे याद नहीं पड़ता।

फिर भी, अब हमारे यहाँ एक बाथरूम बन गया। चौड़ी-सी एक सीढ़ी थी, जिसका कोई उपयोग न जान उसे किचन के कपबोर्ड में तब्दील कर दिया गया। बड़े से डायनिंग रूम को रेगुलर रूम बना दिया गया। उसी से लगकर सीढ़ियाँ थीं। इस बदलाव ने मुझे अप्रत्याशित राहत दी। मेरे पिताजी उस पुराने कमरे में ही मेरी पिटाई करते थे। मैं उसी कमरे में पिटने की शर्मिंदगी और दुख झेलती थी, मर जाने की इच्छा का रिश्ता उसी कमरे से था। उस जगह नया कमरा बन जाने से धीरे-धीरे यह मेरी कल्पना से भी बाहर हो गया कि पिछले वक्तों में मेरे साथ क्या हुआ था। मैं हाई स्कूल में पढ़ रही थी और हर साल पहले से बेहतर नंबर लाती। अब सिलाई और सुलेख पीछे छूट चुके थे, सोशल स्टडीज इतिहास की चीज हो गई थी और अब लैटिन सीखी जा सकती थी।

घर को नए तरीके से सजाने की आशावादिता के बाद भी जाने कैसे हमारे परिवार का व्यवसाय सूख गया। इस बार लाख जतन करने पर भी उसमें जान न लौटी। पिता ने सारी लोमड़ियाँ, सारे मिंक निकाल दिए। बदले में उन्हें इतने कम पैसे मिले कि हम सब कई दिनों तक सदमे में रहे। उसके बाद उन्होंने आसपास के इलाकों में बढ़ई या राजमिस्त्री का काम पकड़ लिया। दिन-भर वह ये काम करते और शाम पाँच बजे धातुओं के कारखाने में चले जाते। घर लौटते-लौटते उन्हें आधी रात हो जाती।

स्कूल से आते ही मैं पिता के लिए खाना बनाने लग जाती। कभी उनके लिए गोश्त के टुकड़े तलती और उन पर खूब सारा केचअप लगाती। उनके थर्मस में कड़क काली चाय भरती। केक के छोटे टुकड़ों पर जैम लगाती या फिर घर में ही उनके लिए कचौड़ियाँ बनाती। कभी मैं बनाती, कभी माँ बनाती, पर धीरे-धीरे माँ के व्यंजन गैर-भरोसे लायक होते चले गए।

हमारे ऊपर एक चीज टूट पड़ने वाली थी, जिसकी हमने कभी उम्मीद भी नहीं की थी। वह चीज कम आमदनी भी ज्यादा विनाशकारी होने वाली थी, हालाँकि अभी तक हमें

उसके बारे में पता भी नहीं था। यह पार्किन्सन्स रोग की शुरुआत थी। मेरी माँ में उसके लक्षण तभी दिखने लगे थे, जब वह चालीस की दहाई में ही थी।

शुरुआत में तो कुछ भी खराब नहीं लगा। कभी-कभी उसकी आँखें उसके सिर में धँस चुकी जान पड़तीं, अजीब तरह से भटकने लगतीं और उसके होंठों के किनारों से बहते अनियंत्रित थूक की लकीरें दिखने लगतीं। किसी की मदद से सुबह वह कपड़े आदि पहनकर तैयार हो जाती, फिर दिन-भर घर के छोटे-मोटे काम निपटाती रहती। यह बेहद आश्चर्यजनक है कि लंबे समय तक उसने अपने भीतर की हिम्मत बचाए रखी थी।

आप सोच सकते हैं कि अब तो हद हो चुकी। धंधा चौपट हो गया, माँ की तबीयत बर्बाद होने लगी है। कहानियों में ऐसा नहीं होता। पर सबसे अजीब चीज है कि मैं अपने जीवन के उस समय को किसी नाखुश समय की तरह याद नहीं कर पाती। घरवालों के भीतर कोई हतोत्साहित करने वाला माहौल नहीं था। शायद इसलिए कि किसी को वह सब समझ में ही नहीं आया। शायद सभी लोग इस उम्मीद में थे कि माँ जल्द ही ठीक हो जाएगी, पर उसकी हालत खराब होती गई। जहाँ तक पिता की बात है, उन्होंने अपनी हिम्मत बहुत सँजोकर रखी थी। वह कारखाने में जिन लोगों के साथ काम करते थे, उन्हें पसंद भी करते थे। वे सारे लोग उन्हीं की तरह थे, जिन्होंने अपने-अपने जीवन के कंधे पर किसी न किसी तरह का अतिरिक्त बोझ लाद रखा था। वह उन सारे अतिरिक्त कामों का मजा लेते थे, जो उन्हें कारखाने के अलावा भी करना होता था। वह कारखाना धातु के स्टोव बनाता था जो कि पूरी दुनिया में बिकते थे। वह खतरनाक काम था, पर पिता कहते थे कि वह सिर्फ तभी खतरनाक दिखता, जब उस काम को खतरनाक की तरह देखा जाता। और वहाँ से उन्हें पैसे अच्छे मिल जाते। उनके लिए सबसे अहम बात यही थी।

मुझे लगता है कि उन्हें घर से बाहर निकल जाना पसंद रहा होगा। भले घर से निकलने के बाद उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ती हो, जोखिम भरे काम करने पड़ते हों। किसी भी तरह घर से बाहर निकल जाना और उन लोगों के बीच पहुँच जाना जो उन्हीं की तरह समस्याओं से दूर आ गए हों।

शाम को उनके जाने के बाद मैं फिर खाना बनाने की तैयारी में लग जाती। मैं वही चीजें बना पाती थी, जिन्हें अपनी नजर में मैं शानदार मानती, जैसे कि ऑमलेट या सेवइयाँ। पर वह सब भी तब तक, जब तक कि ये सस्ती थीं। रात के बर्तन धोने के बाद मेरी बहन का जिम्मा होता कि उन्हें सुखाया जाए। हमें अपने भाई को कोंच-कोंच

के कहना पड़ता कि जाओ, बर्तन धोने से जमा हुआ यह पानी बाहर खेतों में फेंक आओ। (मैं वह खुद भी कर सकती थी, पर हुक्म सुनाना मुझे अच्छा लगता था।)

मैं बड़ी-सी अँगीठी के पास पैर पसारकर बैठ जाती। उस अँगीठी का दरवाजा कब का टूट चुका था। वहाँ बैठ शहर की लाइब्रेरी से लाए मोटे-मोटे उपन्यास पढ़ा करती थी। जैसे कि 'इंडीपेंडेंट पीपुल' जो कि आइसलैंड के जीवन पर था। मैं पाती कि वहाँ के लोगों का जीवन तो हमसे भी कठिन है और उम्मीद की कोई किरण भी नहीं है। या 'रिमेंबरेंस ऑफ थिंग्स पास्ट' पढ़ा करती, उस उम्र में जिसकी कोई भी बात मेरे पल्ले नहीं पड़ती थी, फिर भी उसे पढ़ना मैं बंद नहीं करती थी। या 'द मैजिक माउंटेन', जो कि तपेदिक पर था और दो विपरीत विचारों के मध्य बहस का आख्यान था। उसके एक तरफ प्रसन्न प्रगतिशील जीवन के विचार थे, तो दूसरी तरफ घोर निराशा के रोमांचकारी अँधेरे थे। इस अनमोल समय में मैं कभी अपने स्कूल का होमवर्क नहीं करती थी। पर जब परीक्षाएँ आतीं, मैं सारी रात जागकर पढ़ाई करती। उन सारी चीजों में सिर खपाती, जिन्हें दरअसल मुझे जानना बनता था। मुझमें कुछ समय तक चीजों को ज्यों का त्यों याद रखने की अद्भुत क्षमता थी और उस समय मेरी मदद सबसे ज्यादा उसी ने की।

चाहे मेरे आसपास कितनी ही कठिनाइयाँ थीं, मैं हमेशा खुद को बेहद भाग्यशाली मानती थी।

कभी-कभी मैं और माँ बातें करते थे, ज्यादातर माँ के युवतर दिनों की बातें। अब बमुश्किल ही मैं उसकी कोई बात काट पाती।

कई बार उसने मुझे उस मकान की कहानी सुनाई, जिसमें अब एक हाथ वाला सैनिक वैटी स्ट्रीट्स रहा करता है। वही, जो मेरी स्कूली पढ़ाई का बेहद मजाक उड़ाया करता। कहानी उसके बारे में न होती, बल्कि किसी और के बारे में, जो कि उसकी मकान में रहती थी और बरसों पहले जो मर गई। वह एक बूढ़ी पागल थी, मिसेज नेटरफील्ड। हम सभी किराने के सामान का ऑर्डर फोन पर देते थे और उसकी होम डिलीवरी हो जाती थी। उसी तरह मिसेज नेटरफील्ड भी फोन से ही ऑर्डर देती थी। एक दिन किराने वाला बटर भेजना भूल गया या शायद वह खुद ही बटर ऑर्डर करना भूल गईं, पर जब किराने वाले का छोकरा ट्रक का पिछला दरवाजा खोलकर माल उतार रहा था, मिसेज नेटरफील्ड का ध्यान गया कि बटर तो है ही नहीं। पर जैसे वह इस बात के लिए पहले से तैयार थीं। इसीलिए उन्होंने अपने हाथों में कुल्हाड़ी थाम रखी थी। उन्होंने कुल्हाड़ी लहराते हुए उस छोकरे को दौड़ा लिया। बेचारा हकबकाकर भागा,

किसी तरह ट्रक में चढ़ा और पिछले दरवाजे बंद किए बिना ही वहाँ से ट्रक दौड़ा ले गया।

इस कहानी में कुछ बातें बेहद पहेलीनुमा था। यह बात और है कि उस समय मैंने उन बातों पर ध्यान भी नहीं दिया था, न ही माँ ने, पर आज मैं सोचती हूँ कि आखिर कैसे उस बूढ़ी को पहले ही अंदाजा हो गया था कि इस सामान में बटर नहीं होगा? आखिर क्यों वह पहले ही हथियारशुदा तैयार खड़ी थी, जबकि उसे पता था कि छोकरा महज डिलीवरी करता है, सामान पैक करने में उसकी कोई भूमिका नहीं? क्या वह हमेशा ही अपनी कुल्हाड़ी अपने साथ लिए चलती थी कि किसी के उकसाने पर उसे लहरा दे?

कहते हैं कि जब मिसेट नेटरफील्ड जवान थीं, तब बेहद सुंदर और शालीन थीं।

मिसेज नेटरफील्ड से जुड़ी एक और कहानी है, जो ज्यादा दिलचस्प है क्योंकि उस कहानी से मैं भी जुड़ी हूँ और वह हमारे ही घर के इर्द-गिर्द घटी थी।

वह पतझड़ का कोई सुंदर सा दिन था। मैं बेहद छोटी थी। लॉन की हरियाली में मुझे अपने पालने में सुलाया गया था। उस दोपहर मेरे पिता घर पर नहीं थे, शायद वह खेतों में अपने पिता की मदद करने गए थे, जैसा कि वह कई बार करते थे। मेरी माँ मोरी के पास कपड़े धो रही थी। मैं पहली संतान थी। तो मेरे होने का खासा उत्सव मना था। बहुत सारे कपड़े थे, रिबन्स थीं। इन सब चीजों को ठंडे पानी में बहुत एहतियात से धोना पड़ता था। मेरी माँ जहाँ बैठी काम कर रही थी, उसके सामने कोई खिड़की नहीं थी। बाहर देखने के लिए अपनी जगह से उठ कमरे से बाहर आना होता, उत्तर वाली दीवार तक जाना होता, फिर वहाँ की खिड़की से देखना होता। तब मैं लॉन में पालने में लेटी दिख सकती थी। वहीं से बाहर की सड़क भी दिखती थी और घर का मुख्य फाटक भी।

आखिर ऐसा क्या हुआ होगा कि मेरी माँ के मन में अपना काम बीच में ही छोड़कर खिड़की तक आने का ख्याल आया होगा? आखिर क्यों उस समय वह खिड़की पर आकर सड़क देखने लगी थी? उसे किसी का इंतजार नहीं था। मेरे पिता को आने में अभी समय था। शायद माँ ने उनसे लौटती दफा किराने का कुछ सामान लाने के लिए कहा था। शायद वह उस रात कुछ खास बनाने वाली थी। शायद वह सोच रही थी कि पिता को समय पर घर आ जाना चाहिए। उन दिनों वह अच्छा खाना बनाती थी, कमोबेश, अपनी सास से तो बेहतर ही बनाती थी। उन सभी औरतों से बेहतर जो पिता के परिवार में रही होंगी।

या हो सकता है कि पिता किराने का सामान लेने न गए हों बल्कि कपड़े की कोई डिजाइन पसंद कर रहे हों। ऐसा कोई कपड़ा जिसे माँ अपने लिए सिलना चाहती हो।

उसने कभी नहीं बताया कि आखिर उसके मन के भीतर उस समय क्या आया था।

मेरे पिता के परिवारवाले मेरी माँ की रसोई को ही शक की निगाह से नहीं देखते थे, बल्कि वे उसके कपड़ों की भी निंदा करते रहते थे। मुझे याद है, जब वह मोरी में चीजें धो रही होती, तब भी वही दोपहर वाली पोशाक ही पहने हुए होती। खाना खाने के बाद वह आधा घंटा सो जाती थी और उठने के बाद हमेशा अपने कपड़े बदल लेती थी। बाद में जब मैं उस समय की तस्वीरें देखती, तो पाती कि उनके लिए फैशन आदि का कोई अर्थ ही नहीं था। किसी के लिए भी नहीं था। कपड़े बड़े बेढब होते। मेरी माँ के भरे हुए, कोमल चेहरे पर बॉब-कट हेयर स्टाइल फबती ही नहीं थी। पर नजदीक ही रहने वाली मेरे पिता की रिश्तेदार औरतों को इन सब चीजों पर कोई आपत्ति नहीं थी। मेरी माँ की गलती सिर्फ इतनी थी कि वह जो थी, वैसी नहीं दिखती थी। उसे देखकर कहीं से नहीं लगता था कि उसका पालन-पोषण खेतों के बीच हुआ है। या शायद माँ खुद भी उस तरह नहीं दिखना चाहती थी।

जब वह खिड़की पर खड़ी हुई, तो उसे सड़क पर मेरे पिता की कार आती नहीं दिखी। उसके बदले उसने एक बूढ़ी औरत को देखा। वह मिसेज नेटरफील्ड थीं। वह शायद अपने घर से चलती-चलती यहाँ तक आ गई थीं। वही घर, जहाँ बरसों बाद, एक हाथ वाला सैनिक रहता था और जो मेरी पढ़ाई का मजाक उड़ाया करता था और जहाँ मैंने जीवन में सिर्फ एक ही बार उसकी बॉब-कट पत्नी को पंप से पानी भरते देखा था। वही मकान जहाँ से बहुत पहले एक बूढ़ी सनकी औरत ने किराने का सामान लेकर आए एक लड़के को कुल्हाड़ी लहराते हुए दौड़ा लिया था, महज इसलिए कि वह बटर नहीं लाया था।

मेरी माँ ने उस रोज से पहले भी मिसेज नेटरफील्ड को कई बार देखा होगा। संभव है कि उनमें कभी बात तक न हुई हो। हालाँकि उनमें हुई थी, यह मुझे पता है। हो सकता है कि उस बातचीत को माँ ने हमेशा याद रखा हो, और पिता ने कहा हो कि कोई फिक्र करने की जरूरत नहीं। या हो सकता है कि पिता ने जो कुछ कहा हो, उसे सुन उस औरत के बारे में माँ के शुबहे और बढ़ चुके हों। मेरी माँ मिसेज नेटरफील्ड जैसी औरतों के प्रति सहानुभूति रखती थी, कम से कम जब तक वैसी औरतें सामान्य व्यवहार करती हों।

पर इस समय वह किसी दोस्ताना या सामान्य व्यवहार की उम्मीद नहीं कर पा रही है। वह किचन के दरवाजे से बेहद तेजी से दौड़कर बाहर निकली, पालने से मुझे उठाया, पालना व कंबल-कपड़े वहीं रहने दिए और उतनी ही तेजी से दौड़ते हुए घर में दाखिल हो गई। वह किचन के दरवाजे को लॉक करने की कोशिश करने लगी। सामने वाले मुख्य दरवाजे की कोई चिंता नहीं थी, क्योंकि वह हमेशा ही बंद रहता था।

किचन के दरवाजे के साथ एक समस्या था। जहाँ तक मुझे पता है, उसमें कभी कोई चिटकनी थी ही नहीं। रात के समय किसी एक कुर्सी को दरवाजे से भिड़ा दिया जाता था, उसे टेढ़ा करके ऐसे लगाया जाता था कि वह दरवाजे के हैंडल से एकदम अटक जाए। कोई जरा-सा भी धक्का देगा, तो कुर्सी जोर की आवाज करेगी। घर को सुरक्षित रखने का यह बेहद लापरवाह या कहें राम-भरोसे तरीका था। पिता की दराज में एक रिवॉल्वर हमेशा होती थी। उनके पास एक राइफल थी और कुछ शॉटगन्स भी। जिस व्यक्ति को हर हफ्ते किसी न किसी घोड़े को गोली मारनी हो, उसके पास ये सब चीजें होना अस्वाभाविक नहीं था। जाहिर है कि वे इनमें गोलियाँ भर कर नहीं रखते थे।

क्या उस समय मेरी माँ ने कोई हथियार उठा लेने के बारे में सोचा होगा? क्या उन्होंने अपने पूरे जीवन में कभी बंदूक उठाकर देखी होगी? क्या कभी उन्होंने बंदूक में गोली भरी होगी?

क्या उसके दिमाग में यह ख्याल आया होगा कि वह बूढ़ी औरत महज एक पड़ोसी की तरह उसके घर आई है? मुझे नहीं लगता। उस औरत के चलने के तरीके में ही कुछ ऐसा जरूर रहा होगा, जिन इरादों के साथ वह हमारे बरामदे में आ रही थी, उसे देख मेरी माँ को कहीं से यह नहीं लगा होगा कि वह किसी दोस्ताना विचार के साथ आ रही।

हो सकता है कि मेरी माँ उस समय मन ही मन प्रार्थनाएँ पढ़ रही हो, पर उसने कभी उस बारे में बताया नहीं।

उसे पता चल गया कि जैसे वह दौड़कर किचन के दरवाजे से भीतर घुसी है, वह औरत पालने में पड़े कपड़ों को उलट-पुलट रही है, उसने कंबल उठाकर फेंक दिया है। वह देख माँ की इतनी हिम्मत भी न हुई कि वह खिड़कियों के परदे गिरा दे। वह मुझे अपनी बाँहों में सहेजे घर के ऐसे कोने में छिप गई, जहाँ उसे कोई देख न सके।

दरवाजे पर कोई दस्तक नहीं हुई। किसी ने भिड़ाई हुई कुर्सी को धक्का भी नहीं मारा। कोई आवाज नहीं। कोई हरकत नहीं। कपबोर्ड के पीछे छिपी मेरी माँ मन ही मन दुआ

कर रही थी कि उस औरत ने अपना विचार त्याग दिया होगा और अब तक चली गई होगी।

पर ऐसा नहीं था। वह औरत हमारे घर के चारों ओर घूम रही थी। हर खिड़की के सामने रुक जाती थी। खिड़की पर लगे काँच पर नाक गड़ा-गड़ाकर वह भीतर झाँक रही थी। देर तक अंदर देखती रहती। उस दिन सूरज की रोशनी सुखद थी, इसलिए सारे परदे खुले हुए थे। वह औरत ज्यादा लंबी नहीं थी, फिर भी उसे अंदर झाँकने के लिए उचकना नहीं पड़ रहा था।

छिपी हुई मेरी माँ को यह सब कैसे पता? मुझे गोद में उठाए वह पूरे घर में दौड़ तो रही नहीं थी, कभी यहाँ, कभी वहाँ तो छिप नहीं रही थी, वह एक ही जगह आतंकित रुकी हुई थी, फिर उसे यह सब कैसे पता?

नीचे तहखाना भी था। उसकी खिड़कियाँ इतनी छोटी थीं कि कोई भीतर घुस न सके, लेकिन उसके दरवाजे में अंदर की तरफ से कोई कड़ी नहीं थी। अगर अँधेरे में कोई वहाँ फँस जाए, तो वह बेहद डरावना अनुभव हो सकता था। मान लो कि अगर वहीं से यह औरत घर के भीतर दाखिल होने में सफल हो जाए, तो?

कमरे तो ऊपर पहली मंजिल पर भी थे, लेकिन वहाँ तक पहुँचने के लिए मेरी माँ को वह बड़ा वाला कमरा पार करना होता। वही वाला कमरा, जहाँ बरसों बाद मेरी पिटाई होने वाली थी।

मुझे याद नहीं कि मेरी माँ ने पहली बार यह कहानी मुझे कब सुनाई थी, पर इतना जरूर पता है कि इस कहानी के शुरुआती संस्करण इस तफसील के बाद समाप्त हो जाते थे कि - ..और मिसेज नेटरफील्ड खिड़की पर अपना चेहरा सटाए अंदर झाँकती रही, काँच पर वह अपने हाथ फिराती रही और उतनी देर तक माँ उसी जगह छिपी रही।

पर बाद के संस्करणों में कहानी का अंत बदल गया। उसमें अधीरता आ गई, क्रोध भी आ गया। दरवाजे पर दस्तकें भी आ गईं या उन्हें धक्का देने की कोशिशें भी। चिल्लाने का कभी कोई जिक्र नहीं रहा। बूढ़ी औरत शायद इतनी बूढ़ी थी कि उसकी साँसों में चिल्लाने लायक ताकत ही न रही हो। या जब वह ये सारी हरकतें कर-करके थक गई हो, तो अंततः भूल ही गई हो कि वह आखिर इस जगह आई क्यों थी।

ख़ैर, थक कर वह चली गई। अंत हर बार यही होता था। घर की परिक्रमा करते हुए खिड़की और दरवाजों से झाँकने के बाद वह औरत वहाँ से चली गई। अंततः मेरी माँ के भीतर इतनी हिम्मत जुटी कि उस सन्नाटे में उसने बाहर निकल ताक-झाँक की और पाया कि मिसेस नेटरफील्ड वहाँ से जा चुकी हैं।

जब तक मेरे पिता घर नहीं लौट आए, तब तक उसने किचन के दरवाजे पर भिड़ाई गई कुर्सी हटाई नहीं थी।

मैं यह नहीं कहना चाहती कि मेरी माँ अक्सर यह किस्सा सुनाती थी। यह उसके कथा-भंडार का नियमित हिस्सा नहीं था। वह अक्सर स्कूल के अपने संघर्ष बताती थी। वहाँ तक पहुँचने के संघर्षों के बारे में। अल्बर्टा के जिस स्कूल में उसने पढ़ाई की थी, वहाँ के बच्चे घोड़ों पर सवार होकर आते थे। वे सभी साधारण बच्चे थे और उनकी शरारतें-तरकीबें भी साधारण ही थीं।

मैं उसकी आवाज के उतार-चढ़ाव और उसकी गहराई से ही भाँप जाती थी कि वह कहना क्या चाहती है। दूसरे उसे इस तरह नहीं समझ पाते थे। मैं उसकी दुभाषिया था। कई बार मैं दुख से भर जाती, जब मुझे उसके चुटकुलों को लोगों को पूरे विस्तार से समझाना पड़ता। मैं पाती, लोग उस समय उससे दूर भाग जाना चाहते थे।

उस रोज मिसेज नेटरफील्ड के आने का किस्सा कोई ऐसी बात नहीं थी, जिसे मैं उसके मुँह से बार-बार सुनना चाहती होऊँ। पर मुझे वह किस्सा हमेशा याद रहता था। मुझे याद है, मैंने कई बार उससे पूछा था, 'फिर उस औरत का हुआ क्या?'

उसने बताया, 'शायद उसके रिश्तेदार उसे ले गए। हाँ, शायद। वे लोग उसे यहाँ मरने के लिए अकेला नहीं छोड़ना चाहते होंगे।'

शादी करने के बाद मैं वैंकूवर चली गई। वहाँ अपने पीछे छूटे कस्बे से प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक अखबार मुझे हमेशा मिलता रहा। शायद मेरे पिता और उनकी नई पत्नी ने उस अखबार में जाकर मेरा नया पता लिखवा दिया था और उसका शुल्क भी भर दिया था, ताकि दूर रहकर भी मैं अपने कस्बे के बारे में जान सकूँ। वह नए शहर के मेरे नए घर में हर हफ्ते डाक से आता था। शायद ही कभी मैं उसे खोलकर देखती।

पर एक बार संयोग से जब उसे खोलकर पढ़ते हुए मेरा ध्यान एक नाम पर गया - नेटरफील्ड। वह किसी महिला का नाम था और वह ओरेगॉन में पोर्टलैंड में रहती थी। उसके छपे हुए पते से यह पता चला। उसने अखबार को एक पत्र लिखा था। मेरी ही

तरह उसे भी यह अखबार डाक से मिलता था। मेरी ही तरह उस औरत का भी मूल कस्बा वही था। उसने उस कस्बे में अपना बचपन गुजारा था और उन अनुभवों पर एक कविता लिखी थी।

मैं जानती हूँ घास से ढकी पहाड़ियों को

उसके नीचे एक नदी बहती है

सुकून और आनंद की जगह है वह

मेरे यादों में वह हर पल रहती है

उस कविता में कई पद थे। उसे पढ़ते हुए मैंने पाया कि वह उसी नदी के बारे में लिख रही है, जिस नदी पर अब तक मैं सिर्फ अपना हक मानती आई हूँ।

उसने लिखा था, 'इस पत्र के साथ मैं जो ये पंक्तियाँ संलग्न कर रही हूँ, वह पहाड़ी के पास बसे उस कस्बे में बिताए गए मेरे बचपन की यादें हैं। यदि आपको ये जरा-भी भाएँ, तो इन्हें अपने प्रतिष्ठित अखबार में स्थान देने की कृपा करें, मैं आपकी आभारी रहूँगी।'

नदी पर चमकता है सूरज

अविराम खेलता है अपनी किरणों से

परली ओर के किनारों पर

खिलते हैं मदमाते जंगली फूल।

वह हमारा किनारा था। मेरा किनारा। अगले पद में मैपल वृक्षों का जिक्र किया गया था, वह गलत था, क्योंकि मुझे याद है, वहाँ मैपल नहीं, कुछ और ही विशालकाय वृक्ष थे। किसी अनजान रोग से वे सब अब सूख के ठूँठ बन चुके थे।

उस पत्र ने बाकी सारी चीजें मेरे आगे स्पष्ट कर दीं। उस महिला ने लिखा था, 'मेरे पिता जिनका नाम नेटरफील्ड था, उन्होंने 1883 में सरकार से जमीन का एक टुकड़ा खरीदा था। बाद में उस जगह का नाम लोअर टाउन पड़ गया। वहाँ की जमीन ढुलकते हुए नीचे गिरती थी और जाकर मेटलैंड नदी में समा जाती थी।'

लहरों की झालर इंद्रधनुष से बनी थी

वहीं मैपल्स की घनी छाँव भी फैली थी

नदी जैसे पानी का खेत थी

निरे सफेद हंस झुंड में उस पर तिरते थे

उसने इस कविता में उन दृश्यों को छोड़ दिया था, जिनमें बारिश के दिनों में वह पूरा इलाका कीचड़ से भर जाता था और घोड़ों की टापों के निशान उभरे होते थे। उसने वहाँ बनने वाली खाद का जिक्र भी नहीं किया था। मैं उसकी जगह होती, तो खुद भी इनका जिक्र न करती।

दरअसल, मैंने भी उन सारे दृश्यों पर किसी जमाने में कविताएँ लिखी थीं, बिल्कुल इसी कविता के स्वभाव जैसी, हालाँकि मेरी कविताएँ खो गईं। उन्हें मैंने मन ही मन याद रखा था। वे कविताएँ मैंने उन्हीं दिनों लिखी थीं, जब अपनी माँ की हरकतों को मैं सहन नहीं कर पाती थी। वही दिन थे, जब मेरे पिता अपनी सारी क्रूरताएँ मुझ पर ही उतार देते थे। उस जमाने के लोगों की भाषा में कहूँ, तो पीट-पीटकर मेरा कीमा बना देते थे।

इस महिला ने उस पत्र में लिखा था कि वह 1876 में पैदा हुई थी। जब तक उसकी शादी नहीं हुई, तब तक का जीवन उसने अपने पिता के ही घर में गुजारा था। यह वही घर था, जो सड़क के आखिरी छोर पर बसा हुआ था और जिसके बाद एक बड़ा-सा भूभाग खाली थी और जहाँ से सूरज का उगना एकदम साफ दिखता था।

वह हमारा घर था।

संभव है कि मेरी माँ को कभी यह पता ही न चल पाया, कभी भी नहीं, कि हमारा ही मकान था, जिसमें एक जमाने में नेटरफील्ड परिवार रहा करता था और उस रोज वह बूढ़ी औरत खिड़कियों के भीतर इसलिए झाँक रही थी कि वह अपने ही घर के भीतर एक बार देख लेना चाहती थी।

यह संभव है।

आज जब मैं उतनी बूढ़ी हो गई हूँ, कि पुरानी बातों और पुराने रिकॉर्ड्स में मेरी दिलचस्पी हद दर्जे तक बढ़ गई है, मैं पुरानी-पुरानी चीजों को खोजने के थकाऊ कामों में लगी रहती हूँ, इस उम्र में आकर मुझे पता चलता है कि नेटरफील्ड द्वारा वह मकान बेचे जाने और मेरे माँ-बाप द्वारा उस मकान को खरीदे जाने के बीच, उस

मकान में कई और परिवार भी रहे थे। आप सोच सकते हैं कि जब वह औरत अभी जिंदा थी, तब भी उसके घरवालों ने यह मकान किसी और को क्यों बेच दिया था? क्या वह विधवा हो गई थी? क्या उसके पास के सारे पैसे खत्म हो चुके थे? किसे पता? और वह कौन-सा रिश्तेदार था, जो आकर एक दिन उसे उस कस्बे से ले गया, जैसा कि मेरी माँ बताती थी?

शायद वह उसकी बेटी थी, वही औरत जिसकी चिट्ठी अखबार में छपी है, जो ओरेगॉन में रहती है। शायद वही अपने बचपन के कस्बे में आई थी और अपनी सनक गई बूढ़ी माँ को वहाँ से ले गई थी। शायद वह बूढ़ी औरत उस रोज पालने में अपनी उसी बच्ची को खोज रही थी, जो बड़ी होने के बाद उससे इतनी दूर जा चुकी थी। मेरी माँ द्वारा मुझे गोद में उठाकर वहाँ से दौड़ जाने के तुरंत बाद। बकौल मेरी माँ, मेरी प्रिय जिंदगी को उस रोज बचा लेने के तुरंत बाद।

शादी के बाद जिस इलाके में मैं थी, उसकी बेटी उस इलाके से ज्यादा दूर नहीं रहती। मैं उसे पत्र लिख सकती थी, शायद उसके घर भी जा सकती थी। पर यह सब तब, अगर खुद मैं ही अपनी छोटे-से, नए-नवेले परिवार की समस्याओं से न जूझ रही होती। यह सब तब, अगर उस समय मैं अपने बेहद असंतोषजनक लेखन से लड़ न रही होती।

पर उस समय इस पूरे मुद्दे पर जिस एक व्यक्ति से मैं शिद्दत से बात करना चाहती थी, वह थी मेरी माँ, जो कि तब तक इस दुनिया से जा चुकी थी।

माँ की आखिरी बीमारी, उनके आखिरी दर्शन या उनकी अंत्येष्टि के लिए मैं नहीं गई। मेरे दो छोटे बच्चे थे और वैंकूवर में ऐसा कोई नहीं था, जिनके पास मैं उन बच्चों को छोड़ सकती। हमारे पास इतने पैसे भी नहीं थे कि हम वहाँ तक का टिकट खरीद सकें। मेरे पति को अंत्येष्टि जैसे औपचारिक अवसर पसंद भी नहीं थे, पर उसे क्यों दोष देना? खुद मैं भी वैसा ही महसूस करती थी। हम हमेशा कहते हैं कि कुछ चीजों को कभी माफ नहीं किया जा सकता, या कुछ चीजों के लिए हम कभी खुद को माफ नहीं कर सकते। लेकिन फिर भी हम कर देते हैं - हम हमेशा माफ कर देते हैं।

(वर्ष 2013 की नोबेल पुरस्कार विजेता कनाडाई लेखिका एलिस मुनरो की यह कहानी उनके आखिरी कहानी संग्रह की शीर्षक-कथा है , जो कि 2012 में प्रकाशित हुआ। मूल रूप से पत्रिका 'न्यू यॉर्कर 'में प्रकाशित यह कृति उनके हालिया बरसों के प्रतिष्ठित आत्मकथात्मक लेखन का मुख्य हिस्सा है। मुनरो की कहानियों की तफ्सीलें खुद उन्हीं के जीवन से बनती रही हैं और खुद मुनरो ने यह बात बाज दफा स्वीकार भी की है। इस आत्मकथात्मक रचना को उन्होंने कहानी की शक्ल दी है। उनके आखिरी

संग्रह ' डियर लाइफ ' की सभी कहानियाँ दरअसल उनके आत्मकथात्मक लेखन का ही हिस्सा हैं। यहाँ कहानी की गल्प-शैली और आत्मकथाओं की परिचित असंबद्धता का मिश्रण देखा जा सकता है। मुनरो की कहानियों की भावभूमि अत्यंत समृद्ध होती है , बावजूद उनके आलोचक यह हमेशा रेखांकित करते हैं कि वृहत भावनात्मक दृश्यों की रचना करते समय भी यह लेखिका भावनात्मक उभारों का बरबस दमन करती चलती है। मुनरो एक ही कहानी में कई बार सुंदर-सुगठित भाषा का प्रयोग करती हैं और उसी कहानी में अपने उस गठान को तोड़ निहायत खाँटी भी हो जाती हैं। उनकी कहानियाँ उस जगह से आगे बढ़ जाती हैं , जहाँ वे शुरू होती हैं। इस तरह वे यात्रा की मनमौजी रेखाओं का अंकन करती हैं। उनकी नायिकाएँ अमूमन उनकी माँ को अपने चरित्र के विकास का मॉडल बनाती हैं। उस माँ के चरित्र के कुछ पहलुओं को इस कहानी में भी चित्रित किया गया है। यह कहानी जीवन की तमाम कठिनाइयों के विरुद्ध उम्मीदवार सुंदरताओं का अभिवादन है।

https://www.hindiadda.com/priy-jindagee/